

वैश्विक तापमान वृद्धि और जलवायु परिवर्तन: स्थायित्व के समाधानों की संस्कृति का विकास¹

“पृथ्वी मेरी माता है, वायु मेरा पिता है, अग्नि मेरी मित्र है, जल मेरा निकट-संबंधी है और आकाश मेरा भाई। मैं इन पंचतत्वों का इस प्रकार संबंधी हूँ।”

- भर्तृहरि²

औद्योगिक समय से अब तक वैश्विक औसत तापमान में 0.8 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि हुई है और यह वृद्धि लगातार हो रही है। इसका प्रमुख कारण मानवजनित गतिविधियाँ, जीवाश्म ईंधन का जलना, जिससे पर्यावरण में कार्बन डायऑक्साइड की सघनता बढ़ गई है, और अत्याधिक वनों की कटाई है। औद्योगिक क्रांति से लेकर अब तक हम परंपरागत ऊर्जा स्रोतों का एक तिहाई खर्च कर चुके हैं और एक चौथाई जंगलों की कटाई हो चुकी है³। इन गतिविधियों के परिणामस्वरूप आर्कटिक बर्फ की चादर और हिमनद अभूतपूर्व रूप से पिघल रहे हैं, महासागरों का अम्लीकरण बढ़ा है, भूमि बंजर हो रही है, मौसम में बदलाव आ रहा है और प्राकृतिक आपदाओं की आवृत्ति और तीव्रता भी बढ़ी है।

ग्लोबल वॉर्मिंग और तापमान में वृद्धि के लिए वातावरण में कार्बन की सघनता का बढ़ना प्रमुख कारण है जो ग्रीन हाउस गैस के कारण बढ़ता है। इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि अगर हम आज से ही जीवाश्म ईंधन के उपयोग पर रोक लगा देंगे तो तापमान में वृद्धि को रोका जा सकेगा। कार्बन सघनता में वृद्धि जीवाश्म ईंधन के जलने पर निर्भर करती है लेकिन इसका एक दम सटीक अनुमान लगाना मुश्किल है। ज्यादातर वैज्ञानिकों का मानना है कि अगर भयावह जलवायु परिवर्तन से बचना है तो सदी के अंत तक तापमान में वृद्धि को दो डिग्री सेल्सियस से अधिक नहीं बढ़ने देना होगा। इस लक्ष्य को सभी ने स्वीकारते हुए कानकून क्लाइमेट समिट 2011 में अपनाया। हालांकि कई ऐसे छोटे द्वीपीय देश भी हैं जो दो डिग्री सेल्सियस तापमान में वृद्धि होने पर या तो डूब जाएंगे या विलुप्त होने की कगार पर पहुँच जाएंगे। इसलिए कई देश लगातार इस बात पर जोर दे रहे हैं कि तापमान में वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस से कम रखा जाए।

तापमान में वृद्धि को दो डिग्री सेल्सियस से कम रखने के लिए ज़रूरी है कि वातावरण में कार्बन की सघनता को 350 पीपीएम से कम रखा जाए। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के अनुसार अगर सक्रिय प्रयास नहीं किए गए और

¹ The discussion paper sets the tone for the international Conference on Science, Faith and Climate Change, supported by Govt of MP and organized with the inspiration of Sh Anil Madhav Dave, Hon'ble Member of Parliament. The Paper is prepared by CEOEDECON, which is a knowledge partner for the Conference.

² Bhartrihari is a Sanskrit author who is likely to have written two influential [Sanskrit](#) texts - [Vākyapadiya](#), on [Sanskrit grammar](#), and [Śatakṭraya](#), a work of [Sanskrit poetry](#).

³ Since 1750 we have used 35% of the known 17000 GT of fossil fuels and cut 1/3rd of of then existing forests of 60 million square kilometers

मौजूदा स्थिति से जलवायु परिवर्तन होता रहा तो इस सदी के अंत तक तापमान में वृद्धि के चार से छः डिग्री सेल्सियस तक बढ़ने की आशंका है। मार्च 2015 में वैश्विक कार्बन सघनता 400 पीपीएम तक पहुँच चुकी है⁴। ऐसी उम्मीद है कि अगर कार्बन सघनता 450 पीपीएम होती है तो हम अपने लक्ष्य दो डिग्री सेल्सियस से आगे निकल जाएंगे।

आइपीसीसी की पाँचवीं आंकलन रिपोर्ट के अनुसार हम वातावरण में केवल 1000 गीगाटन ही उत्सर्जित कर सकते हैं (जो कार्बन बजट के नाम से जाना जाता है)। इससे दो डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य को पाने की 50 प्रतिशत उम्मीद है। इस रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि हम 2011 तक 52 प्रतिशत कार्बन बजट इस्तेमाल कर चुके हैं और अगर हम वर्तमान गति से जीवाश्म ईंधन का उपयोग (40.3 गीगाटन कार्बन डायऑक्साइड प्रतिवर्ष) करते रहे तो अगले 12 वर्षों यानि 2032 तक कार्बन बजट खत्म कर देंगे। जिसकी वजह से दो डिग्री सेल्सियस से कम तापमान वृद्धि के लक्ष्य को हासिल करने का संयोग केवल दो तिहाई ही बचेगा। और अगर तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस से कम रखना है तो कार्बन बजट को और 400 गीगाटन कम करना होगा।

इसका मतलब है कि ज्ञात जीवाश्म ईंधन का एक बड़ा हिस्सा अप्रयुक्त छोड़ देना होगा। इसे वैश्विक स्तर पर देखें तो दुनिया के ज्ञात कोयला भंडार का 88 प्रतिशत, 52 प्रतिशत गैस और 35 प्रतिशत तेल। वर्तमान प्रति व्यक्ति उत्सर्जन को चार टन कार्बन डायऑक्साइड के समकक्ष से कम करके दो टन कार्बन डायऑक्साइड के समकक्ष करने की ज़रूरत है। ऐसा करने के लिए हमें उत्सर्जन को 2050 तक 40 से 70 प्रतिशत तक कम करना होगा। हम उत्सर्जन कम करने में जितनी देर करेंगे, दो डिग्री सेल्सियस के लक्ष्य को हासिल करना उतना ही कठिन हो जाएगा। यदि हम आज ही उत्सर्जन के अपने उच्चतम स्तर पर पहुँच जाएँ और फिर उत्सर्जन कम करें, तब भी प्रति वर्ष लक्ष्य से पाँच प्रतिशत उत्सर्जन अधिक ही होगा।

वर्तमान वैश्विक प्रयास

पिछले दो दशकों में जलवायु को स्थिर बनाने और कम कार्बन उत्सर्जन के साथ विकास के संदर्भ में काफी अंतरराष्ट्रीय प्रयास हुए हैं। वैज्ञानिक तथ्य बताते हैं कि तापमान में वृद्धि को दो डिग्री सेल्सियस से कम और कार्बन डायऑक्साइड की सघनता को 450 पीपीएम से कम रखने की अत्यंत आवश्यकता है। विज्ञान के अनुसार जीवाश्म ईंधन के उपयोग और कार्बन उत्सर्जन में तीव्र कटौती की ज़रूरत है। हालांकि, इतने प्रयासों के बाद भी इस संदर्भ में प्रभावी उपायों पर कोई राजनैतिक सहमति नहीं बन पाई है। जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन और क्योटो प्रोटोकॉल, जिसने औद्योगिक और विकसित देशों को एक श्रेणी में रखा और ग़रीब और विकासशील देशों को दूसरी में। इसने विकसित देशों पर उत्सर्जन में कमी करने की अधिक ज़िम्मेदारी डाली और तकनीक और वित्त के माध्यम से नेतृत्व प्रदान करने के लिए कहा। लेकिन इन सभी बातों का उल्लंघन होते हुए अभी तक इस मामले पर कोई ठोस राजनीतिक निर्णय नहीं बन पाया है। दिसंबर में पेरिस सम्मेलन में होनेवाली संधि में विकासशील व छोटे देश समता और विकास के लिए कार्बन उत्सर्जन के अधिकारों के लिए एक असफल संघर्ष कर रहे हैं।

⁴ The carbon concentration breached 400 ppm threshold at Mauna Loa (Hawaii) observatory for the first time in May 2013.

क्योटो प्रोटोकॉल (1997) में 43 औद्योगिक देशों को मिलकर 1990 के स्तर से पाँच प्रतिशत उत्सर्जन कम करने के लिए कहा गया था। लेकिन वास्तव में 1990 से 2012 तक संयुक्त राष्ट्र अमरीका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, और जापान ने अपना उत्सर्जन छः प्रतिशत बढ़ाया है। पश्चिमी यूरोप ने आठ प्रतिशत उत्सर्जन कम करने का लक्ष्य तय किया था लेकिन वह भी केवल सात प्रतिशत ही कम कर पाया है। ज्यादातर उत्सर्जन में कटौती, लगभग 55 प्रतिशत, पूर्वी यूरोप की तरफ से हुई जिसका एक कारण आर्थिक मंदी रहा। एनेक्स1 देशों ने 1970 से 2012 तक केवल 1.5 प्रतिशत ही उत्सर्जन कम किया है, जबकि इस दौरान इन देशों का उत्सर्जन कुल उत्सर्जन के 80 प्रतिशत से भी अधिक था।

जलवायु परिवर्तन पर अंतरसरकारी समिति (आईपीसीसी) की रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2080–2100 तक वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन को शून्य स्तर पर पहुँचाने की आवश्यकता है और वैश्विक कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन को 2055–2070 के पहले ही शून्य स्तर पर पहुँचाने की आवश्यकता है। ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन की अनुमानित सीमा वर्ष 2025 तक 47 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड के समकक्ष और उसके बाद 2030 तक 42 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड के समकक्ष है। वर्तमान में यह उत्सर्जन लगभग 50 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड के समकक्ष है (2010)। यूनाइटेड नेशंस एनवायरनमेंट प्रोग्राम (यूएनईपी) का विश्लेषण दर्शाता है कि विभिन्न देशों की वर्तमान प्रतिबद्धताओं के तहत ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में अनुमानित लक्ष्यों के बरअक्स 2025 तक आठ से दस गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड के समकक्ष और 2030 तक 14–17 गीगाटन कार्बन डाइऑक्साइड के समकक्ष ही कमी हो सकेगी। स्पष्टतः वर्तमान प्रतिबद्धताएँ तापमानवृद्धि को रोकने और दो डिग्री से कम रखने के लिए अपर्याप्त हैं। रिपोर्ट से यह बात सामने आई कि ब्राज़ील, चीन, यूरोप के कुछ देश और भारत अपने 2020 के संकल्पों को पूरा करने के रास्ते पर हैं लेकिन ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, मैक्सिको, और संयुक्त राष्ट्र को अपने संकल्पित लक्ष्य हासिल करने के लिए कुछ और बेहतर कार्य करने की ज़रूरत है।

चीन (29 प्रतिशत वैश्विक उत्सर्जन), संयुक्त राष्ट्र अमरीका (17 प्रतिशत), यूरोप (12 प्रतिशत) और भारत (6 प्रतिशत) कार्बन उत्सर्जन के संदर्भ में चार बड़े देश हैं। हालांकि भारत का प्रति व्यक्ति उत्सर्जन (1.7 टन) अन्य देशों जैसे संयुक्त राष्ट्र (17 टन), यूरोप (7 टन) और चीन (6.7 टन)⁵ के मुकाबले काफी कम है। चीन और संयुक्त राष्ट्र दो ऐसे देश हैं जो कुल वैश्विक उत्सर्जन के आधे उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार हैं। और इसके बावजूद संयुक्त राष्ट्र ने क्योटो पर करार नहीं किया और चीन विकासशील देश होने के कारण उत्सर्जन कटौती के लिए बाध्य नहीं है।

नवंबर 2014 में चीन ने यह घोषणा की कि वह 2020 तक अपने उत्सर्जन उच्चतम स्तर तक बढ़ाएगा, जिसमें से 20 प्रतिशत हिस्सा गैर जीवाश्म ईंधन के माध्यम से होगा, और फिर अपने उत्सर्जन में कटौती करेगा। संयुक्त राष्ट्र ने भी 2005 को आधारवर्ष मानकर 2025 तक 26 से 28 प्रतिशत उत्सर्जन कम करने के लिए कहा है। कोपेनहेगन में भी संयुक्त राष्ट्र 2005 को आधारवर्ष मानते हुए 2020 तक 17 प्रतिशत उत्सर्जन कम करने की घोषणा कर चुका है, जो कि अगर 1990 के आधारवर्ष के हिसाब से देखें तो महज़ तीन प्रतिशत से भी कम है। यह नया संकल्प भी पहले की तरह अमहत्वाकांक्षी है जिसमें प्रतिवर्ष केवल 0.5 प्रतिशत उत्सर्जन कटौती का वादा किया गया है। चीन, जो कि 2007 के बाद से अमरीका से अधिक उत्सर्जन कर रहा है, ने कोपेनहेगन से पहले ही

⁵ At 2011 level

यह घोषणा की थी कि 2005 के आधार पर वह 2020 तक अपनी उत्सर्जन तीव्रता को 40 से 45 प्रतिशत तक कम करेगा। चीन के बढ़ते उत्सर्जन के कारण उस पर उत्सर्जन कम करने को लेकर लगातार वैश्विक दबाव बढ़ रहा है और साथ ही परिवेशी वायु की ख़राब गुणवत्ता को देखते हुए घरेलू दबाव भी बढ़ा है। हाल ही में की गई घोषणा का मतलब है कि चीन 2020 तक 12.14 गीगाटन उत्सर्जन करेगा।

भारत ने हमेशा अपना पक्ष रखते हुए कहा है कि अपने आर्थिक विकास हासिल करने के लक्ष्य के बावजूद भारत अपना प्रति व्यक्ति उत्सर्जन विकसित देशों की तुलना में कम रखेगा। कोपेनहेगन क्लाइमेट समिट 2010 में भारत 2005 के आधार पर 2020 तक 20 से 25 प्रतिशत उत्सर्जन तीव्रता कम करने की घोषणा कर चुका है। राष्ट्रीय स्तर पर भी कई प्रयास हो रहे हैं। 2008 में भारत ने जलवायु परिवर्तन पर राष्ट्रीय कार्य योजना की घोषणा की थी। इस कार्य योजना में सौर ऊर्जा, ऊर्जा दक्षता, जंगल, पानी, कृषि और हिमालय पारिस्थितिकी तंत्र पर शमन और अनुकूलन शामिल है। हाल ही में भारत ने अपने 2022 तक के सौर ऊर्जा के लक्ष्य को दो हज़ार गीगावाट से बढ़ाकर एक लाख गीगावाट कर दिया है। सरकार पवन ऊर्जा (जिसकी वर्तमान स्थापित क्षमता 20 हज़ार मेगावाट है), तटीय क्षेत्र और स्वास्थ्य पर भी तीन नए मिशन एकीकृत करना चाह रही है। भारत ने डीज़ल और पेट्रोल के मूल्यों को नियंत्रण मुक्त करने के अलावा उसपर सब्सिडी भी ख़त्म की है और कोयले पर उपकर 50 रुपये प्रति टन से बढ़ाकर 200 रुपये प्रति टन कर दिया है। भारत के 35 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में से 22 राज्य जलवायु परिवर्तन पर राज्य कार्य योजनाएं भी बना चुके हैं।

यूरोपीय संघ ने 1990 को आधारवर्ष मानते हुए 2030 तक 40 प्रतिशत और 2050 तक 85 से 90 प्रतिशत तक ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन कम करने की प्रतिबद्धता की है⁶। पहले यूरोपीय संघ ने 2020 तक 20 प्रतिशत कम करने के लक्ष्य रखा था जिसे बढ़ाकर अब यह नई प्रतिबद्धता की है। हालांकि यूरोपीय संघ 2012 में ही 20 प्रतिशत उत्सर्जन कटौती हासिल कर चुका है, इस हिसाब से इसकी नई घोषण काफी निराशाजनक है। बड़े प्रदूषकों, खासकर अमरीका में महत्वाकांक्षा के अभाव में कनाडा, जापान, आस्ट्रेलिया और रूस जैसे देशों को छूट मिल गई कि वह भी क्योटो के वादों से पीछे हट जाएँ। परिणामस्वरूप दूसरे क्योटो प्रोटोकाल में केवल 21 देश ही शामिल हैं जो केवल 15 प्रतिशत वैश्विक उत्सर्जन के लिए ज़िम्मेदार हैं।

क्लाइमेट फ़ाइनेंस की विकासशील देशों में ऋणात्मक कार्बन उत्सर्जन करने वाले विकास को गति देने में महत्वपूर्ण भूमिका है। यूएनएफसीसीसी और क्योटो प्रोटोकाल में औद्योगिक देशों के लिए वित्तीय दायत्वों से संबंधित विभिन्न प्रावधान हैं। क्योंकि विकसित देश पहले ही बहुत उत्सर्जन कर चुके हैं इसलिए उत्सर्जन कम करने में, ऐतिहासिक दृष्टि से, इनकी ज़िम्मेदारी ज़्यादा है। जलवायु प्रणाली के स्थिरीकरण के लिए इन्हें अपना योगदान देना चाहिए। कानकून 2010 में औद्योगिक देशों ने 2020 से प्रति वर्ष विकासशील और ग़रीब देशों को 100 बिलियन अमरीकी डॉलर उपलब्ध कराने का वादा किया था जो लांग टर्म फ़ाइनेंस के रूप में ग्रीन क्लाइमेट फंड स्थापित हुआ। लेकिन 2014 तक विकसित देश इस फंड में केवल 10.2 बिलियन अमरीकी डॉलर ही जमा कर पाए, जबकि विकासशील देश 15 बिलियन अमरीकी डॉलर की उम्मीद लगा रहे थे।

पेरिस की ओर

⁶ The KP asks EU to reduce by 40% by 2020

विश्व के भविष्य को लेकर इस साल दो बड़े कार्यक्रम होने हैं। पहला सितंबर में संयुक्त राष्ट्र द्वारा सतत् विकास लक्ष्यों को अपनाना और दूसरा दिसंबर में पेरिस में जलवायु परिवर्तन पर एक नया समझौता अपनाना (जो देशों की सामाजिक और वित्तीय परिस्थितियों और संकट तक लाने में उनके योगदान को देखे बिना सभी देशों को जलवायु स्थिरता में अपना योगदान देने के लिए जोर डालेगा)।

जिस तरह हम पेरिस सम्मेलन की ओर बढ़ रहे हैं, पूरे विश्व के लोगों का विकास के लिए एंथ्रोपोसेंट्रिक दृष्टिकोण, अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं की राजनीति के वादों और जलवायु संकट के समाधान के लिए स्थायी समाधान से मोहभंग हो रहा है। राजनीति और अर्थशास्त्र के प्रभुत्व में विज्ञान ऐसे समाधान उपलब्ध कराने में नाकाम रहा है जो विकास को केवल भौतिक लाभ के पर्याय में नहीं देखे। जलवायु परिवर्तन और सतत् विकास के प्रचलित दृष्टिकोण को, बिना फ्रेमवर्क में सुधार किए समाधान के रूप में देखा जा रहा है। हालांकि, यह दृष्टिकोण न तो मूल कारणों को समझ पा रहे हैं और न ही पर्याप्त रूप से महत्वाकांक्षी हैं।

हालांकि अब विकास के प्रचलित मॉडल (ग्रोथ फंडामेंटलिज़्म) पर सभी तरफ से सवाल उठ रहे हैं। विश्व के सभी हिस्सों से लोग तेज़ी से विकास के वैकल्पिक रास्ते की ओर आकर्षित हो रहे हैं। इन वैकल्पिक सुझावों में आमूल परिवर्तनवादी (डिग्रोथ, डिग्लोबलाइज़ेशन आदि) दृष्टिकोण से लेकर आध्यात्मिक और नैतिक दृष्टिकोण की बातें हो रही हैं। जिसने जलवायु को एक नैतिक प्रश्न, पर्यावरणीय प्रबंधन, मानव और प्रकृति के रिश्तों के बीच तालमेल, धरती माँ के अधिकारों आदि के रूप में देखा जा रहा है।

मूलवासी व अन्य परंपरागत समुदायों के सामाजिक व पर्यावरणीय मूल्यों पर हो रहे अनुसंधानों द्वारा उनके मूल्यों से वैश्विक समस्याओं के निदान की राह ढूँढने का प्रयास भी किया जा रहा है। पूरे विश्व के लोगों का विज्ञान (खासकर भू-अभियांत्रिकी और अपरीक्षित प्रौद्योगिकी) और राजनीति (अंतरराष्ट्रीय वार्ताओं में अमीर और विकसित देशों का जारी वर्चस्व) के वादों से मोहभंग हो रहा है। सामाजिक और पर्यावरण संबंधी आन्दोलनों ने वैकल्पिक उपायों की शक्ति पर जोर दिया है और वर्तमान राजनैतिक अर्थव्यवस्था से हटकर स्थायी जीवनयापी परिस्थितियाँ बनाने की ज़रूरत पर जोर दिया है, जबकि धार्मिक व आस्था समूह जलवायु परिवर्तन को नैतिक मुद्दे के रूप में अनुयायियों के सामने रखते हैं।

विज्ञान और राजनीति के आगे: प्रकृति के साथ मनुष्य के संबंधों व सांस्कृतिक परंपराओं की अनिवार्य मूल्य के रूप में पुनर्परिचलना की आवश्यकता

रियो पृथ्वी सम्मेलन ने प्रकृति व जलवायु के संरक्षण और समान व स्थायी विकास को राजनीतिक एजेण्डे की मुख्यधारा में लाने का वादा किया था। हालाँकि रियो+२० सम्मेलन ने इस बात का उल्लेख किया कि हम अपेक्षा पर खरा उतरने में असफल रहे हैं और इसके कारण भी ऐसे गूढ़ नहीं हैं जिन्हें समझने में मुश्किल हो। पिछले कुछ दशकों में हमने पर्यावरण और जलवायु परिवर्तन को संबोधित करने के दृष्टिकोण व प्रयासों में विज्ञान और परंपराओं के बीच एक छद्म विभाजन देखा है, जहाँ वे दो धुरों के रूप में दिखाई देते हैं। धर्म, आस्था, आध्यात्मिकता और नैतिकता को कम महत्व दिया गया है और विज्ञान व अर्थशास्त्र को प्रमुखता का स्थान दिया जा रहा है, जो कि ज्ञान की कुछ व्यवस्थाओं को विशेषाधिकार देकर अन्य का बहिष्कार करने जैसा है। इस कालखण्ड में पश्चिमी और गैर-पश्चिमी सभ्यताओं के वे मूल्य जो कि जनसमुदाय, स्थान और प्रकृति के मध्य संबंध स्थापित

करते हैं, संरक्षण नीतियों और कार्यपद्धतियों से लगातार खोते गए हैं। इसका परिणाम जीवनानुभवों, संस्कृति, परंपराओं, विश्वदृष्टि, प्राचीन समझ व बुद्धिमत्ता की वृहद व्यवस्थाओं और उनसे जुड़ी कार्यपद्धतियों में हास के रूप में सामने आया है।

प्रकृति और मनुष्य के संबंध सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से अनुकूलित व विकसित हुए हैं, जो कि विभिन्न संस्कृतियों और समुदायों में जैवविविधता के संरक्षण के लिए तमाम तरह के कारणों का निर्माण करते हैं।⁷ वर्षों के अपने इतिहास में पूरी दुनिया के विभिन्न समुदायों ने ऐसी कार्यपद्धतियाँ और परंपराएँ विकसित की हैं जो प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण में उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक मूल्यों को रेखांकित करती हैं। यह जानना बहुत दिलचस्प है कि यह परंपराएँ भी उतनी ही विविधतापूर्ण हैं जितनी कि हमारी प्रकृति। यह विविधता स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण की आवश्यकता पर इन समुदायों के प्रयासों को प्रदर्शित करती है।

यह हमें बाध्य करता है कि प्रकृति के संरक्षण के लिए विज्ञान और राजनीति द्वारा संचालित दृष्टिकोण के विकल्प के तौर पर सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों की ओर हम पुनः देखें। ज़िम्मेदारी (कर्तव्य), सहजीवन (सामुदायिक जीवन) और प्रकृति के साथ साम्य के मूल्यों की प्रधानता सभी सांस्कृतिक परंपराओं की विशेषता है। चीनी, ग्रीक और रोमन, फ़ारसी, यहूदी, लातिन अमरीकी, अरबी, अफ्रीकी, कोरियन, जापानी व अन्य सभी प्राचीन दर्शन न केवल इनकी शिक्षा देते हैं बल्कि उनका पालन भी करते हैं। इन सभी प्राचीन दर्शनों में प्रकृति के संरक्षण का विचार नया नहीं है। भारत में तक़रीबन 2000 साल पहले राजाज्ञा ने क्षेत्रों व प्रजातियों का संरक्षण किया। पवित्र उपवन, वन, झरने, नदिया और पर्वत ऐसे पवित्र क्षेत्र माने गए जहाँ हमारे पूर्वज, पवित्र आत्माएँ रहते थे या पवित्र अनुष्ठान किये जाते थे। (Byers et al. 2001)

पोप फ्रांसिस का जलवायु परिवर्तन पर हालिया उपदेश (जून २०१५) भी इन सांस्कृतिक परंपराओं पर जोर देता है, जिसमें उन्होंने पारिस्थितिकी संरक्षण के लिए संस्कृति, परंपरा और धार्मिक व नैतिक आचरण पर नवीनता के साथ ध्यान केन्द्रित करने हेतु आस्थावानों को संबोधित किया है। अपने उपदेश में उन्होंने औद्योगिक अपशिष्ट व पक्षियों के हास के प्रति चेताया और नवीकरणीय ईंधन पर अनुदान व ऊर्जा दक्षता पर जोर दिया।

हिन्दू धर्म संपूर्ण जीवन की पवित्रता और निर्मलता के लिए आत्म-नियंत्रण, संयम, सादगी, आहार आदि के विशिष्ट दिशा-निर्देशों सहित नैतिक जीवन के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करता है। वेदों, उपनिषदों, पुराणों, सूत्रों व अन्य धार्मिक लेखन में प्रकृति में निहित दैवीय श्रेष्ठता की आराधना के कई प्रसंग हैं। हिन्दू धर्म सिखाता है कि पंचमहाभूत यानी पाँच प्रमुख अवयव - आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी - जो कि मिलकर पर्यावरण का निर्माण करते हैं, सभी प्रकृति से आये हैं। प्रकृति यानी प्राथमिक ऊर्जा। इनमें से प्रत्येक अवयव का अपना जीवन और स्वरूप है। उपनिषद इसे आगे विस्तार देते हैं कि मनुष्य का शरीर इन्हीं पंचतत्वों से मिलकर बना है। हमारे संवेदीतंत्र और इन तत्वों के मध्य यह संबंध ही प्राकृतिक जगत के साथ हमारे मानवीय रिश्तों का आधार है। कई भारतीय पारंपरिक समूहों की चेतना में देवत्व के विस्तार रूप में पर्यावरण व प्रकृति की सुरक्षा धर्म का (कर्तव्य, नैतिकता और लौकिक आदेश के रूप में) हिस्सा रहा है, और वे जीवन में धर्म, पारिस्थितिकी व नैतिकता को अलग-अलग क्षेत्रों की तरह नहीं देखते। पारंपरिक समूहों जैसे बिश्नोइयों का पशुओं व पेड़ों की सुरक्षा करना,

⁷ Yamin 1995

स्वाध्यायियों का वृक्षमंदिर बनाना, या भीलों द्वारा अपने उपवनों का संरक्षण आदि ऐसे क्रियाकलाप हैं, जो उनके जीवन में अनिवार्य रूप से शामिल हैं और जीवन का सम्मान करने के उनके धर्म का हिस्सा हैं। भारतीय परंपरा में अहिंसा व संन्यास प्रकृति के साथ हिंसा किए बिना और समाज या प्रकृति पर अतिरिक्त भार डाले बिना मितव्ययी जीवन जीने के महान सिद्धांत हैं। बहुत से लोग महात्मा गाँधी के मूल्यों को पारिस्थितिकी पर एक ग्रंथ की तरह देखते हैं। उनके सादा जीवन के संदेश, अपव्यय से घृणा, सत्य और अहिंसा पर जोर, अत्यधिक मशीनीकरण व औद्योगिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के प्रति नापसंदगी, और सबसे बढ़कर स्वराज (आत्मनिर्भर ग्राम्य अर्थव्यवस्था की कल्पना) सभी ने, व्यक्तिगत जीवन में प्रकृति का हिस्सा होने और उसका आदर करने के उनके विश्वास के प्रति बहुत लोगों को प्रभावित किया है।

भारत की समृद्ध परम्परा को देखकर एक बार अरनॉल्ड जे. टॉयनबी ने कहा था, मानव इतिहास के इस बेहद ख़तरनाक समय में मानवता की रक्षा का एकमात्र गति भारतीय गति है। यहाँ वह भावना और नज़रिया है जो समस्त मानव जाति का एक परिवार में साथ-साथ बढ़ना संभव बना सकती है। शायद अल गोर का भी यही आशय था जब उन्होंने पर्यावरण पर आयोजित एक सम्मेलन में कहा था कि 'हम पिछले ३०० सालों से ग़लत रास्ते पर थे। अब समय है कि हम पुनर्विचार करें और पूर्व की ओर रुख करें।' (सोनी, सुरेश २०१३).

सिंहस्थ कुंभ- भारतीय पर्यावरणीय परंपरा और सामाजिक मूल्यों का प्रतिरूप

कुंभ एक धार्मिक सभा है जहाँ लाखों भारतीय नदियों के प्रति अपनी श्रद्धा दिखाने के लिए इकट्ठा होते हैं। यह कुंभ हर तीन साल में इन चार जगहों पर होता है - हरिद्वार, इलाहाबाद, नाशिक और उज्जैन। मध्य प्रदेश के उज्जैन में होनेवाला कुंभ सिंहस्थ कुंभ कहलाता है। लाखों लोग सिंहस्थ कुंभ में आते हैं और इस वर्ष यह अनुमान लगाया जा रहा है कि लगभग 50 करोड़ लोग सिंहस्थ में आयेंगे। यह दुनिया की सबसे बड़ी धार्मिक और सांस्कृतिक सभा मानी जाती है। 'कुंभ' बहुत पुरानी परंपरा है, जो कई कारणों से दुनिया भर के समुदायों का ध्यान आकर्षित करता है। दुनिया के विभिन्न भागों से प्रमुख विश्वविद्यालय और बिज़नेस स्कूल कुंभ के आयामों को समझने के लिए शोध कर चुके हैं। वैदिक दर्शन में निहित मूल्यों पर जोर देने का यह उचित समय है, जो कि हिंदू धर्म की परंपराओं में निहित प्रकृति के प्रति संवेदना को रेखांकित करता है। जिसके अनुसार प्रकृति पाँच अवयवों - जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश से युक्त है। सिंहस्थ यह समझने का अच्छा अवसर है कि इन प्रथाओं ने मानव और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखने की किस तरह महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।